



International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519

IJSR 2020; 6(5): 100-103

© 2020 IJSR

www.anantaajournal.com

Received: 06-06-2020

Accepted: 17-07-2020

डॉ० देव निरंजन झा

पूर्व शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार,
भारत

भारतीय धर्म के स्रोत या उपादान: एक समीक्षा

डॉ० देव निरंजन झा

सारांश:

हिन्दू धर्म का मूल आधार वेद है। अपौरुषेय वेद को आश्रित कर ही सभी प्रकार की धारणाएँ विकसित हुई हैं। धर्म के प्रमाण के रूप में वेद सर्वोपरि हैं। भारतीयदर्शन के अन्तर्गत सभी आस्तिक दर्शनों ने वेद की प्रामाणिकता स्वीकार की है और अनेक सम्प्रदायों ने प्रत्यक्ष और अनुमान के साथ आगम को प्रमाण माना है। आगम के अन्तर्गत भी वेद प्रधान हैं। मन्त्रब्राह्मणात्मकशब्दराशि वेदान्तगत देवों की स्तुतियाँ और यज्ञ क्रियाएँ ही विशेषरूप से विवेचित हैं और मनुष्य को परमात्मा एवं परलोक की ओर अधिक उन्मुख किया गया है।

प्रस्तावना

गौतमधर्मसूत्र के अनुसार वेद धर्म के मूल या प्रमाण हैं और उन वेदों के ज्ञाता मनु आदि की स्मृति तथा धर्मानुकूल आचरण भी प्रमाण है। यथा—^[1]

‘वेदो धर्ममूलम्। तद्विदां च स्मृतिशीले।’

बौधायनधर्मसूत्र यह निर्देश देता है कि धर्मों का उपदेश वेद की प्रत्येक शाखा में किया गया है, इस धर्मसूत्र का लक्ष्य वेदप्रतिपादित धर्म की व्याख्या करना है। स्मृति में प्रतिपादित धर्म द्वितीयस्थान पर आता है और उसके अनन्तर तीसरे प्रकार का धर्म शिष्टागम अर्थात् शिष्टजनों का आचरण है। यथा—^[2] ‘उपदिष्टो धर्मः प्रतिवेदम्। तस्याऽनुव्याख्यास्यामः। स्मार्तो द्वितीयः, तृतीयः शिष्टागमः।’

सामयाचारिक धर्मों की व्याख्या करते हुए आपस्तम्ब धर्मज्ञों के समय अर्थात् व्यवस्था को तथा वेदों को प्रमाण मानते हैं। वे वेद को धर्मज्ञों के लिए भी प्रमाण मानकर अन्य पुरुषों के लिए धर्मज्ञों को प्रमाण मानते हैं, अतः धर्म का मूल स्रोत वेद ही है।^[3]

वसिष्ठधर्मसूत्र में भी श्रुति, स्मृति और शिष्टजन के आचरण को प्रमाण या धर्म का स्रोत कहा गया है। प्रथमतः वेद प्रमाण है, उसके अभाव में स्मृति और इन दोनों के अभाव में शिष्टाचार प्रमाण है। इस प्रकार धर्म के स्रोत या उपादान वेद, स्मृति और शिष्टजन के आचार हैं। यथा—^[4] ‘श्रुतिस्मृतिविहितो धर्मः। तदलाभे शिष्टाचारः प्रमाणम्।’

वेद भारतीयपरम्परा में प्राचीनतम और सर्वप्रसिद्ध ग्रन्थ है। प्रमुख धर्मशास्त्रकार महाराज मनु ने अपने ग्रन्थ में वेद को सभी धर्मों के मूल रूप में स्वीकार किया है— ‘सब वेद, उन्हें (वेदों को) जानने वालों (मनु आदि) की स्मृति और ब्राह्मणत्व आदि तरह प्रकार के शील या राग द्वेष-शून्यता, महात्माओं का आचरण और अपने मन की प्रसन्नता (जहाँ धर्मशास्त्रों में अनेक पक्ष कहे गये हैं, वहाँ जिस पक्ष वाले विधान को स्वीकार करने में अपना मन प्रसन्न हो), यह सब धर्म के मूल हैं। यथा—^[5]

‘वेदोऽखिलो धर्ममूलं स्मृतिशीले च तद्विदाम्।
आचारश्चैव साधूनामात्मनस्तुष्टिरेव च।।’

मनु ने बहुत स्पष्ट शब्द में कहा है कि अर्थ और काम में अनासक्त मनुष्यों के लिए धर्मोपदेश किया जाता है, धर्म के जिज्ञासुओं के लिए वेद ही मुख्यप्रमाण है। यथा—^[6]

‘अर्थकामेष्वसक्तानां धर्मज्ञानं विधीयते।
धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुतिः।।’

Corresponding Author:

डॉ० देव निरंजन झा

पूर्व शोध छात्र, संस्कृत विभाग,
पटना विश्वविद्यालय, पटना, बिहार,
भारत

पवित्र धर्मग्रन्थों या ईश्वर प्रकाशित ज्ञान में आस्था [7] (आ+स्था+अङ्) श्रद्धा, देखभाल, आदर, विचार, ध्यान रखना। प्रायः सभी धर्मों का प्रमुख तत्त्व है। धर्म का सम्बन्ध तर्क से न होकर आस्था से है। कुछ परम्पराएँ, मान्यताएँ धर्म का रूप ग्रहण कर लेती हैं। [8]

गौतमधर्मसूत्र के व्याख्याकार हरदत्त ने इस सन्दर्भ में यह और भी स्पष्ट किया है कि चारों वेद प्रमाण हैं। वेदाश्रित उपनयनादि ही धर्म हैं। यथा—[9] 'वेदो मन्त्रब्राह्मणात्मकः। चत्वारो वेदा ऋग्यजुःसामात्मकास्तएव धर्म प्रमाणम्। न योगिप्रत्यक्षं नानुमानं नार्थापत्तिर्न शाक्यागमः। तेन तन्मूला एवोपनयनादयो धर्मा वक्ष्यन्ते।' गोविन्दस्वामी के शब्दों में अतीन्द्रियार्थ का प्रतिपादन करने वाले नित्य ग्रन्थराशि का नाम वेद है, उसके प्रतिपाद्य को धर्म कहा गया है। यथा—[10] 'अतीन्द्रियार्थप्रतिपादको नित्या ग्रन्थराशिर्वेदः। तत्प्रतिपाद्यो धर्मः।' आपस्तम्बधर्मसूत्रव्याख्या में हरदत्त का कथन है कि वेद ही धर्माधर्म का मूलप्रमाण है। वेद नित्य और निर्दोष है। उसके सम्बन्ध में उपालम्भ सम्भव नहीं है। शब्द स्वतः प्रमाण है। यथा—[11] 'वेदा एव मूलप्रमाणं धर्माधर्मयोः। न च नित्य— निर्दोषेषु वेदेषूक्तोपालम्भसम्भवः। स्वतः प्रमाणस्य हि शब्दस्य न वक्तुदोषनिबन्धनमप्रामाण्यम्।'

भारतीय दर्शनसम्प्रदायों में विशेषतः मीमांसा ने शब्द की नित्यता पर विशेष बल दिया है, किन्तु नैयायिक आप्त के प्रामाण्य के कारण ही वेद का प्रामाण्य मानते हैं। यथा—[12] 'तत् प्रामाण्यमाप्तप्रामाण्यात्।' सांख्यदर्शन भी वेद को अपौरुषेय और स्वतः प्रमाण मानता है। वेदान्तदर्शन ब्रह्म को वेद की योनि मानता है। यथा—[13] 'शास्त्रयोनित्वात्।'

ब्रह्म वेद का कर्ता नहीं है, किन्तु वेद बिना किसी प्रयत्न के ब्रह्म से उद्भूत है। ऋषियों में वेद की वाणी प्रविष्ट हुई और वे उस ज्ञान के द्रष्टा मात्र हैं। ऋषि गमनार्थक धातु से औणादिक इन् प्रत्यय से निष्पन्न ऋषि शब्द का अर्थ है— मन्त्रद्रष्टा। ऋषियों की इसी मन्त्र—दृष्टि की ओर संकेत करते हुए यास्क कहते हैं—[14] 'साक्षात्कृतधर्माणां ऋषयो बभूवुः।' स्वयं ऋग्वेद में ऋषियों में प्रविष्ट हुई वाणी का दूसरों द्वारा प्राप्त किया जाना उल्लिखित है। यथा—[15]

'यज्ञेन वाचः पदवीयमायन्तामन्वविन्दन् ऋषिषु प्रविष्टाम्।
तामाभृत्याव्यदधुः पुरुत्र तां सप्तरेमा अभिनवन्ते।।'

वेद स्वयं भी अपनी नित्यता का प्रमाण प्रस्तुत करता है—[16] 'तस्मै नूनमभिद्यवे वाचा विरूपनित्यया। वृष्णे चोदस्व सुष्टुतिम्।।' तैत्तिरीयब्राह्मण के शब्दों में वाक् परमेश्वर का अविनाशी रूप है, यज्ञ का प्रथमनिर्माण करनेवाली वेदों की माता तथा अमृत की नाभि है—[17]

'वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माताऽमृतस्य नाभिः।'

ऋषियों के द्रव्य होने का उल्लेख करते हुए योगिराज अरविन्द ने उनके द्वारा दृष्ट ज्ञान को शाश्वत, सत्य और अवैयक्तिक कहा है। वेद या श्रुति दैवी शब्द है, जो अनन्त से स्पन्दित (स्पन्द+वत्) गया हुआ— 'तम् नाडी का स्फुरण, धड़कन, धकधक।' [18] होता हुआ मानव के अन्तःश्रोत्र में सुना जाता है और वह भी ऐसे मनुष्य के अन्तः श्रोत्र में, जिसने स्वयं को उस ज्ञान के प्राप्तियोग्य बनाया है। [19] दृष्टि और श्रुति दोनों ही अन्तःस्फूर्ति से उद्भूत ईश्वर प्रकाशित ज्ञान के वाचक हैं।

स्वामी विवेकानन्द हिन्दू धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों के मूल तत्त्वों के प्रथम तत्त्व वेदविषयक आस्था को स्वीकार करते हैं। वेद की नित्यता को स्पष्ट करते हुए वह कहते हैं— वेद का अर्थ है भिन्न—भिन्न कालों में भिन्न—भिन्न व्यक्तियों द्वारा आविष्कृत आध्यात्मिक तत्त्वों का संचित कोष। जिस प्रकार गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त मनुष्यों के पता लगाने से पूर्व से ही अपना काम करता चला आ रहा था और आज यदि मनुष्यजाति उसे भूल भी जाए तो

भी वह नियम अपना कार्य करता ही रहेगा, ठीक वही बात आध्यात्मिक जगत् (वि०) (स्त्री०लि०) (गम्+क्विप् नि० द्वित्वं तुगागमः) संसार। [20] को चलाने वाले नियमों के सम्बन्ध में भी है। [21] धर्मसूत्रों में वेदज्ञान की बार—बार प्रशंसा की गयी है। गौतमधर्मसूत्र, वेद को धर्म और श्रुति का मूल बताते हुए अंगो सहित सम्पूर्ण वेद को जानने वाले श्रोत्रिय के वचन भी प्रमाण मानता है। यथा—[22] 'तन्मूलत्वाद्धर्मस्य श्रुतेश्च।' वसिष्ठ का भी कथन है कि वेदों का पूर्ण ज्ञान रखने वाले तीन या चार ब्राह्मण जो कुछ कहें वही धर्म समझना चाहिए। यथा—[23]

'चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्रूयुर्वेदपारगाः।
स धर्म इति विज्ञेयो नेतरेषां सहस्रशः।।'

बौधायनधर्मसूत्र में वेद के पारायण को अत्यन्त पवित्र करने वाला घोषित किया गया है। यथा—[24]

'ऋग्यजुस्सामवेदानां वेदस्याऽन्यतमस्य वा।
पारायणं त्रिरभ्यस्येदनश्नन् सोऽतिपावनः।।'

किसी एक वेद का तीन बार विधिपूर्वक अध्ययन करने से पवित्रता प्राप्त होती है। आपस्तम्ब के अनुसार धर्म और अधर्म का ज्ञान वेद से ही होता है। ये दोनों स्वयं आकर अपना परिचय नहीं देते। देवता, गन्धर्व और पितृगण भी धर्माधर्म का उपदेश नहीं करते। यथा—[25] 'न धर्माधर्मो चरत आवां स्व इति, न देवगन्धर्वा न पितर इत्याचक्षतेऽयं धर्मोऽयमधर्म इति।' वेद से ही यह ज्ञान प्राप्त होता है, जो नित्यनिर्दोष है।

आपस्तम्बधर्मसूत्र तो स्पष्ट शब्दों में उसी कर्मकाण्ड को प्रामाणिक और करणीय मानता है जिसका वेद में विधान है, उससे भिन्न को नहीं। तीन प्रकार की विद्याओं से सम्पन्न विद्वानों का मत है कि वेद ही परम प्रमाण है। इस कारण वेदों में व्रीही, यव, यज्ञ—पशु, आज्य, दुग्ध, कपाल से तथा पत्नी के साथ, उच्च या मन्द स्वर से मन्त्रों का पाठ करते हुए जिन कर्मों के करने का विधान है उन्हें ही करना चाहिए चूंकि उनके विपरीत आचरण का निर्देश करने वाले नियम प्रमाण नहीं हैं। यथा—[26] 'त्रैविद्यवृद्धानां तु वेदाः प्रमाणमिति निष्ठा तत्र यानि श्रूयन्ते व्रीहियवपशवाज्यप्यः कपालपत्नीसम्बन्धान्युच्चैर्नीचैः कार्यमिति तैर्विरुद्ध आचारोऽप्रमाणमिति मन्यन्ते।' वेदयुक्त नियमों के अनुसार कर्म करने वाला पुत्र ही प्रशंसनीय है। यह अपने दिवंगत पूर्वजों के यज्ञ तथा सुख की वृद्धि करता है। यथा—[27] 'ते शिष्टेषु कर्मसु वर्तमानाः पूर्वेषां साम्परायेण कीर्तिं स्वर्गं च वर्धयन्ति।'

वसिष्ठधर्मसूत्र के 27वें अध्याय के अनेक पद्यों में वेदज्ञान की प्रशंसा की गयी है— जिस प्रकार जलती हुई अग्नि हरे वृक्षों को भी जला देती है उसी प्रकार वेद की अग्नि दुष्कर्मों के पाप नष्ट कर देती है। यथा—[28]

'यथा जातबलो वह्निर्दहत्यार्द्रानपि द्रुमान्।
तथा दहति वेदाग्निः कर्मजं दोषमात्मनः।।'

वेदज्ञान की पावन करने वाली शक्ति सौ से भी अधिक पापों का प्रभाव वैसे ही नष्ट कर देती है, जैसे अग्नि ईधन को जला देती है। जिस ब्राह्मण को ऋग्वेद कण्ठस्थ है वह पापयुक्त नहीं होता, भले ही उसने तीनों लोकों का नाश कर दिया हो और सभी प्रकार के व्यक्तियों का अन्न खा लिया हो। यथा—[29]

'यद्यकार्यशतं साग्रं कृतं वेदश्च धार्यते।
सर्वं तत्तस्य वेदाग्निर्दहत्यग्निरिवेन्धनम्।।'

वसिष्ठ का यह विश्वास है कि वेद का ज्ञान होने पर अथवा वेद की शक्ति पर आस्था होने से मनुष्य को पापकर्मों में किसी प्रकार

का सुख नहीं मिल सकता। यथा—^[30]

‘न वेदबलमाश्रित्य पापकर्मरतिर्भवेत्।’

वेदविहित नियमों के पालन को परम सुख का साधन बताते हुए अन्यत्र कहा गया है, बिना थके उन नियमों को करे, जिनका विधान वेद करते हैं, क्योंकि यदि उनका पालन सामर्थ्य के अनुसार करता है तो परम सुख की अवस्था प्राप्त करेगा। यथा—^[31]

‘वेदोदितं स्वकं कर्म नित्यं कुर्यादतन्द्रितः।
तद्धि कुर्वन्थथाशक्त्या प्राप्नोति परमां गतिम्।।’

धर्मसूत्र न केवल वेद को धर्म का मूल या प्रमाण मानते हैं, अपितु वेद की अलौकिक, पावन करने वाली तथा पापों को नष्ट करने वाली शक्ति के प्रति भी अत्यन्त आस्थावान् हैं। मन्त्रों में विद्यमान अद्भुत क्षमता तथा अदृष्ट फल के प्रति उन्हें कहीं सन्देह नहीं है। धर्मसूत्र पद-पद पर प्रत्येक क्रिया के साथ मन्त्रों का विधान तो करते ही हैं, उनमें जादुई शक्ति का एक प्रधान साधन भी मानते हैं। सभी धर्मसूत्रों ने वैदिक मन्त्रों के जप को परम कल्याणकारी माना है, विशेषतः ऊँकार तथा गायत्री का जप सभी प्रकार के पाप का विनाश करने वाला माना गया है। यथा—^[32] ‘अपि वा सावित्रीं पञ्चशोऽर्द्धशस्ततः समस्तामित्येतामृचं त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात्पापात् प्रमुच्यते। अपि वा व्याहृतीर्व्यस्ताः समस्ताश्चेति त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात् पापात् प्रमुच्यते।’

बोधायन के अनुसार— जो व्यक्ति जल में खड़ा होकर सविता देवता के गायत्रीमन्त्र के प्रत्येक चरण का अलग-अलग, अर्द्धर्च-अर्द्धर्च का अलग-अलग और फिर सम्पूर्ण मन्त्र का तीन बार पाठ करता है, जो ओंकार का ही तीन बार उच्चारण करता है, वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। यथा—^[33] ‘अपि वा प्रणवमेव त्रिरन्तर्जले पठन् सर्वस्मात् पापात्प्रमुच्यते।’ ऊँ अक्षर ब्रह्म है ब्रह्म ही यह ज्योति है। यथा—^[34] ‘ओमिति ब्रह्म, ब्रह्म वा एष ज्योतिः, य एष ज्योतिः य एष तर्पयत्येष वेदा स एव तर्पयति वेद्यमेवैतद्य एष तर्पयति एवमेष आत्मानं तर्पयत्यात्मने नमस्करोत्यात्मा ब्रह्माऽऽत्मा ज्योतिः।’ प्रणव ही ब्रह्म है। प्रणव का ही ध्यान करें। यथा—^[35] ‘प्रणवात्मको वेदः। प्रणवो ब्रह्म प्रणवं ध्यायेत्।’ वेद प्रणव से ही आरम्भ होते हैं। उनका अन्त भी प्रणव अर्थात् ऊँ से होता है। प्रणव और व्याहृतियाँ नित्य तथा सनातन ब्रह्म हैं। जो व्यक्ति नित्य ही ओंकार, सात व्याहृतियाँ तथा त्रिपदा गायत्री के उच्चारण में रत है, उसके लिए कोई भय नहीं रह जाता। ^[36] यही उक्ति आपस्तम्ब की भी है— ‘ओंकार स्वर्ग का द्वार है, अतः वेदाध्ययन ऊँकार से आरम्भ करना चाहिए।’ यथा—^[37] ‘ओंकारस्वर्गद्वारं तस्मात् ब्रह्मऽध्येष्यमाण एतदादि प्रतिपद्येत्।’ वसिष्ठधर्मसूत्र में ऊँकार को वेद का सर्वोत्तम अंश, सर्वाधिक पवित्र करने वाला मन्त्र कहा गया है। यथा—^[38]

‘एकाक्षरं परं ब्रह्म पावनं परमं स्मृतम्।’

प्रतिदिन वेद का अध्ययन तथा अपने सामर्थ्य के अनुसार महायज्ञों का अनुष्ठान शीघ्र ही घोर पापों को भी नष्ट कर देता है। यथा—^[39]

‘वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्रमः।
नाशयत्याशु पापानि महापातकनान्यपि।।’

वेद की एक ऋचा का उच्चारण भी तपस्या के समान माना गया है। वसिष्ठ के शब्दों में यदि कोई सन्यासी फल, मूल खाकर वन में तप करता है और गृहस्थ एक ऋचा का ही उच्चारण करता है तो दोनों कर्मों का पुण्य समान होता है। यथा—^[40]

‘तपस्तपति योऽरण्ये मनिर्मूलफलाशनः।

ऋचमेकां च योऽधीते तच्च तानि च तत्समम्।।’

गायत्रीजप के पुण्य की भी धर्मसूत्रों में प्रशंसा की गयी है। बोधायन के अनुसार जो व्यक्ति जल में खड़ा होकर सविता देवता के गायत्री मन्त्र के प्रत्येक चरण का अलग-अलग, अर्द्धर्च का अलग-अलग और फिर सम्पूर्ण मन्त्र का तीन बार पाठ करता है वह सभी पापों से मुक्त हो जाता है। ^[41] वसिष्ठ के अनुसार यदि सभी पापों का दोष एक व्यक्ति पर आ पड़े तो दस हजार गायत्री मन्त्र जप करने से शुद्धि हो जाती है। यथा—^[42]

‘सर्वेषामेव पापानां संकरे समुपस्थिते।
अभ्यासो दशसाहस्रः सावित्र्या शोधनं महत्।।’

निष्कर्षः

सभी धर्मसूत्रों ने प्रायश्चित्त के प्रकरण में विभिन्न वेदों के मन्त्रों को पापमुक्त करने वाला बताया है और इन मन्त्रों के जप का विधान किया है। वेद के अध्ययन के प्रति धर्मसूत्रों का विशेष आग्रह है। न केवल ब्रह्मचर्य अपितु गृहस्थ और वानप्रस्थ आश्रम में भी स्वाध्याय का विधान किया गया है। ब्रह्मचर्याश्रम इस वेद के ज्ञान की आधारशिला के रूप में था, तो गृहस्थाश्रम उसके व्यवहार और आचरण का जीवन था। वानप्रस्थ और सन्यास पूर्णतः वेदज्ञान के परम प्रयोजन को सिद्ध करने का जीवन था अतएव धर्मसूत्रीय व्यवस्था का आधार और केन्द्र वेद ही हैं।

धर्मसूत्रों में विवेचित धर्म पूर्णतः वैदिक है। प्रायः सभी धर्मसूत्रों ने वैदिक ऋचाओं, मन्त्रों या ब्राह्मण वाक्यों के उद्धरण दिये हैं। धर्मसूत्र का कर्मकाण्ड साक्षात् वैदिक विधानों पर आश्रित है। उसकी दृष्टि में मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन भी एक यज्ञ है, जो गृह्याग्नि की वेदी के चारों ओर सम्पन्न होता है। धर्मसूत्रों के लिए वेद का सर्वोच्च महत्त्व है। श्रुति से विहित कर्म ही सर्वोपरि हैं। श्रुति से जो समर्थित नहीं, वह धर्म नहीं है। वेद की अकुण्ठित शक्ति पर धर्मसूत्रों को पूर्ण आस्था है।

सन्दर्भ-सूची:

1. गौतमधर्मसूत्र— 1.1.1-2
2. बोधायनधर्मसूत्र— 1.1.1-4
3. आपस्तम्बधर्मसूत्र— 1.1.2-3
4. वसिष्ठधर्मसूत्र— 1.4-5
5. मनुस्मृति— 2.6
6. मनुस्मृति— 2.13
7. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ०— 168
8. धर्मसूत्रपरिशीलन, पृ०— 84
9. गौतमधर्मसूत्र— 1.1.1 की व्याख्या
10. बोधायनधर्मसूत्र— 1.1.1 की व्याख्या
11. आपस्तम्बधर्मसूत्र— 1.1.3 की हरदत्त की व्याख्या।
12. न्यायसूत्र— 2.1.68
13. ब्रह्मसूत्र— 1.1.2
14. निरुक्त— 1.6.20
15. ऋग्वेद— 10.7.13
16. ऋग्वेद— 8.75.6
17. तैत्तिरीयब्राह्मण— 2.8.5
18. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ०— 1146
19. धर्मसूत्र का परिशीलन, पृ०— 86
20. संस्कृत हिन्दी कोश, पृ०— 36
21. धर्मसूत्र का परिशीलन, पृ०— 86-87
22. गौतमधर्मसूत्र— 1.6.20
23. वसिष्ठधर्मसूत्र— 3.7
24. बोधायनधर्मसूत्र— 4.5.26
25. आपस्तम्बधर्मसूत्र— 1.20.6
26. आपस्तम्बधर्मसूत्र— 2.23.6

27. आपस्तम्बधर्मसूत्र— 2.24.3
28. वसिष्ठधर्मसूत्र— 27.2
29. वसिष्ठधर्मसूत्र— 27.1
30. वसिष्ठधर्मसूत्र— 27.4
31. वसिष्ठधर्मसूत्र— 27.8
32. बौधायनधर्मसूत्र— 4.4.6—7
33. बौधायनधर्मसूत्र— 4.4.8
34. बौधायनधर्मसूत्र— 2.17.36
35. बौधायनधर्मसूत्र— 2.18.31—32
36. बौधायनधर्मसूत्र— 4.1.27, वसिष्ठधर्मसूत्र— 25.6, 25.10
37. आपस्तम्बधर्मसूत्र— 1.13.6
38. वसिष्ठधर्मसूत्र— 25.11.2
39. वसिष्ठधर्मसूत्र— 27.7
40. वसिष्ठधर्मसूत्र— 27.5
41. बौधायनधर्मसूत्र— 4.4.6
42. वसिष्ठधर्मसूत्र— 25.12